भारत में बैंककारी विनियमन का विकास - कुछ पहलुओं पर एक पूर्वावलोकन *

वी.लीलाधर

बैंकरों के सम्मेलन, जो भारतीय बैंकिंग उद्योग में एक प्रमुख वार्षिक घटना बन गया है, के अवसर पर आज दोपहर बाद यहाँ आकर मुझे प्रसन्नता महसूस हो रही है। मुझे आमंत्रित करने के लिए मैं आयोजकों का तहे दिल से आभार व्यक्त करता हूँ। इस अवसर ने मुझे पिछले कई दशकों से भारत में बैंककारी विनियमन के विकास मार्ग के बारे में अपने विचारों को बाँटने का मौका दिया है। मेरे विचार से इस विषय का वर्तमान समय में खास स्थान है क्योंकि भारत ने इस वर्ष अपनी आज़ादी के 60 वर्ष पूरे कर लिए हैं। जबकि पिछले छह दशकों के दौरान भारतीय बैंकिंग प्रणाली ने वास्तव में एक कठिनाई भरा और टेढ़ा-मेढ़ा लंबा सफर तय किया है, फिर भी शायद इसका पूर्वव्यापी संदर्भ में मूल्यांकन करना कि हमने कहाँ से शुरुआत की थी और हम कहाँ तक पहुँचे हैं और हमें कितना सफर अभी पार करना बाकी है, उपयुक्त होगा। अत: मैं बैंकिंग प्रणाली के इस लम्बे सफर में पार किए गए विशिष्ट स्तरों का संक्षिप्त विहगावलोकन प्रस्तुत करना चाहता हूँ और इस उद्योग की मौजूदा स्थिति का जायज़ा लेना चाहता हूँ। इस मौके पर मैं भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की वर्तमान विनियामक व्यवस्था के कुछ पहलुओं के बारे में किसी कारणवश उत्पन्न कुछ संदेहों के बारे में भी संक्षिप्त रूप में चर्चा करना चाहूँगा।

भारतीय बैंकिंग का संस्थागत विकास

निस्संदेह, आप में से कई यह जानते ही होंगे कि सदियों से भारत में बैंकिंग की देशी प्रणाली विद्यमान थी और वह उस समय की अर्थव्यवस्था की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करती थी। सुप्रसिद्ध कौटिल्य अर्थशास्त्र, जो ईसा पूर्व चौथी सदी में लिखा गया था, में भी लेनदार और देनदार का ज़िक्र किया गया है। उदाहरण के लिए उसमें यह कहा गया कि *''यदि कोई दिवालिया हो जाता था तो राज्य के कर्ज को अन्य लेनदारों से प्राथमिकता दी जाती थी।''* इसी प्रकार *''ऋण पर दिए गए पण्यों पर ब्याज''* (प्रयोग

* श्री वी.लीलाधर, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 26 नवंबर 2007 को होटल ताज लैण्ड एण्ड, मुंबई में बैंकरों के सम्मेलन (बैंकॉन) 2007 में किया गया विशेष संबोधन।

प्रत्यदानम) को राज्य के राजस्व के रूप में लेने का भी उल्लेख किया गया है। अत: ऐसा लगता है कि मध्यकालीन भारत में उधार देने की क्रियाविधि संपूर्ण रूप से अनजानी नहीं थी तथा *'लेनदारों के दावों की प्राथमिकता'* और *'पण्य उधार'* जैसी अवधारणाएं स्थापित कारोबार प्रणालियाँ थीं।

तथापि, आधुनिक इतिहास की अवधि के दौरान भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग की शुरुआत अठारहवीं सदी के शुरू में हुई, जब जून 1806 में बैंक ऑफ कलकत्ता की स्थापना की गई - जिसका जनवरी 1809 में बैंक ऑफ बंगाल के नाम से पुन: नामकरण किया गया - जिसका प्रमुख उद्देश्य जनरल वैल्लेसले की लड़ाई को निधि उपलब्ध कराना था। इसके बाद चार बैंकों अर्थात् मद्रास बैंक, कर्नाटक बैंक, बैंक ऑफ मद्रास और एशियाटिक बैंक के पुनर्गठन और समामेलन के माध्यम से जुलाई 1843 में संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना की गई।यह बैंक बैंकिंग में प्रमुख नवीन प्रक्रियाएं जैसे संयुक्त पूँजी प्रणाली, शेयरधारकों पर सीमित देयता, आम जनता से जमाराशियाँ स्वीकारना आदि ले आया। दि बैंक ऑफ बॉम्बे, जो अँग्रेजी हुकूमत के अंतर्गत गठित अंतिम बैंक था, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के घोषणापत्र के अनुसरण में आज़ादी के लिए भारत की पहली लड़ाई के लगभग एक दशक बाद वर्ष 1868 में स्थापित किया गया। तीन प्रेसिडेंसी बैंक, तब उनको इस नाम से जाना जाता था, का समामेलन जनवरी 1921 में हुआ था और उसे दि इंपिरियल बैंक ऑफ इंडिया का रूप दिया गया। इस बैंक ने तीन तरफी भूमिका निभाई : एक वाणिज्यिक बैंक के रूप में, बैंकरों के बैंक के रूप में और सरकार के लिए बैंकर के रूप में। यहाँ यह जानना उल्लेखनीय है कि भारत में बैंकों का विलयन और बैंकिंग प्रणाली में समेकन यह कोई हाल की घटना नहीं है, जैसा कि कई बार सोचा जाता है, और यह कम से कम 1843 की घटना है और इसकी प्रक्रिया अब भी जारी है। वर्ष 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक के गठन से इंपीरियल बैंक के केंद्रीय बैंकिंग के कुछ कार्य भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ले लिए गए और तत्पश्चात् जुलाई 1955 में स्थापित भारतीय स्टेट बैंक ने इंपीरियल बैंक के अन्य कार्य ले लिए और वह इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का उत्तराधिकारी बन गया।

भारत में बैंकिंग पर विधायी विनियमन का विकास

भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग के शुरुआती चरण में विनियामक ढाँचा कुछ असंगठित हो गया था और प्रेसिडेंसी बैंकों का नियंत्रण और संचालन उस समय के उनके रायल चार्टर, दि ईस्ट इंडिया कंपनी और भारत सरकार द्वारा किया जाता था। हालांकि कंपनी कानून वर्ष 1850 में ही भारत में लागू कर दिया गया था, फिर भी यह कानून बैंकिंग कंपनियों पर लागू नहीं था। तथापि, वर्ष 1913 के बैंकिंग संकट से यह पता चला कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली में कई कमज़ोरियाँ थीं जैसे बैंकों की चल आस्तियों का कम अनुपात और जुड़ी उधार प्रथाएं जिसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर बैंक विफल हुए। भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जाँच समिति (1929-31), जो बैंक विफलता के विषय पर कार्य कर रही थी, द्वारा दी गई सिफारिशों ने देश में बैंकिंग विनियमन के लिए कानून के लिए रास्ता बनाया।

हालांकि भारतीय रिज़र्व बैंक को उसके मौद्रिक प्रबंधन अधिदेश के अंग के रूप में शुरुआत से ही सामान्य ऋण नियंत्रण लिखतों के माध्यम से अर्थव्यवस्था में बैंक ऋण की मात्रा और लागत को विनियमित करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अंतर्गत अधिकार प्राप्त थे; फिर भी, वर्ष 1949 में ही ऐसा व्यापक अधिनियमन लागू हुआ जो केवल बैंकिंग क्षेत्र के लिए लागू था। वर्ष 1949 से पहले बैंकिंग कंपनियों का भी अन्य कंपनियों के साथ भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 द्वारा नियमन किया जाता था जो वर्ष 1850 के पूर्व के कंपनी कानून का व्यापक पुनराधिनियमन था। तथापि, इस अधिनियम में विशेषत: बैंकों पर लागू कुछ प्रावधान थे। कुछ तदर्थ अधिनियमन भी थे, जैसे बैंककारी कंपनी (निरीक्षण) अध्यादेश, 1946 और बैंककारी कंपनी (शाखाओं का

प्रतिबंध) अधिनियम, 1946 जिसमें विशिष्ट विनियामक मदें शामिल थीं। इस पृष्ठभूमि में, मार्च 1949 में बैंककारी कंपनी अधिनियम, 1949 नामक एक विशेष कानून पारित किया गया जो केवल बैंकिंग कंपनियों पर लागू था। इस अधिनियम का मार्च 1966 में बैंककारी विनियमन अधिनियम नाम से पुन: नामकरण किया गया। इस अधिनियम ने रिज़र्व बैंक पर बैंकों को लाइसेंस जारी करने, शाखाओं के विस्तार, उनकी आस्तियों की चलनिधि, कार्य के प्रबंधन और प्रणाली, समामेलन, पुनर्निर्माण और परिसमापन संबंधी जिम्मेवारी सौंपी। अधिनियम में समय-समय पर कई प्रावधानों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए ताकि भारतीय रिज़र्व बैंक के दायित्त्व का विस्तार किया जा सके अथवा बढ़ाया जा सके अथवा संबंधित प्रावधानों में लचीलापन लाया जा सके, जो बैंकिंग क्षेत्र की गतिविधियों की जरूरतों के अनुरूप हो।

यह जानना रुचिकर होगा कि मार्च 1966 तक शहरी सहकारी बैंकों के कार्य में रिज़र्व बैंक की व्यावहारिक कोई भूमिका नहीं थी। तथापि, बैंककारी विधि (सहकारी समितियों पर यथालागू) अधिनियम, 1965 के अधिनियमन से बैंककारी विनियमन अधिनियम के बैंकिंग कारोबार संबंधी मामलों वाले कतिपय प्रावधानों को शहरी सहकारी बैंकों पर भी लागू किया गया। अत: वर्ष 1966 में पहली बार शहरी सहकारी बैंक भी भारतीय रिज़र्व बैंक के विनियामक कार्यक्षेत्र के अंतर्गत लाए गए।

बैंककारी विनियमन और पर्यवेक्षण के लिए विवेकपूर्ण नीति की रूपरेखा

विश्व भर में बैंकिंग संस्थानों की बारीकी से विनियमन और पर्यवेक्षण करने की मूल धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि कई कारणों से बैंक को *विशिष्ट* माना गया है। बैंक जनता से गैर-संपार्श्विक जमाराशियां स्वीकार करती हैं, भुगतान और निपटान प्रणाली का एक भाग हैं, जनता से प्राप्त राशियों से निधिकृत जमाराशि बीमा की सुरक्षा का उपभोग करते हैं तथा मौद्रिक नीति अंतरण के लिए एक प्रमुख चैनल हैं। अत: बैंक प्रणाली की वित्तीय स्थिरता की ईमारत का प्रमुख स्तंभ बन जाता है - जो एक *जनता का माल है* जिसे उपलब्ध कराने के लिए जनता के प्राधिकारी प्रतिबद्ध हैं। अत: बैंकिंग प्रणाली के माध्यम से संक्रमण को फैलने से बचाना वास्तव में किसी ऐसे प्रणालीगत संकट को टालने के लिए, जो संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए काफी खर्चीला हो सकता है, बैंकों के विनियमन का स्पष्ट उपसाध्य बन जाता है। खासकर ऐसा बैंकों की वित्तीय प्रणाली में अपनी भूमिका के स्वरूप के कारण होनेवाले अनिवार्य संबंधों का परिणाम है। अत: वित्तीय नियंत्रकों का प्रमुख उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली की सुरक्षा और मजबूती सुनिश्चित करना है। जबकि बैंकों पर विनियमन और पर्यवेक्षण लागू करने की रूपात्मकता, बाज़ार और प्रौद्योगिकीय गतिविधियों के साथ-साथ दशकों बाद विकसित हुई है किंतु इसके पीछे के मूलभूत उद्देश्य में शायद ही कोई परिवर्तन हुआ हो। हाँ, एक सुनियंत्रित और सक्षम बैंकिंग क्षेत्र से वित्तीय प्रणाली की आबंटनात्मक क्षमता को भी बढ़ावा मिलता है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास सुकर बनता है।

इस पृष्ठभूमि में वर्षों के दौरान जैसे-जैसे भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्य में विकास हुआ, बैंकिंग प्रणाली के नियंत्रक और पर्यवेक्षक के रूप में इसकी भूमिका का केंद्र धीरे-धीरे व्यष्टि विनियमन से समष्टि विवेकपूर्ण पर्यवेक्षण में परिवर्तित हुआ। भारतीय रिज़र्व बैंक की भूमिका अर्थात् वाणिज्य बैंकों के विकास में प्रमुख उपलब्धियाँ बड़ी रोचक हैं। कृपया मुझे इस विकास की प्रक्रिया के मुख्य-मुख्य पहलुओं पर संक्षिप्त में बताने की अनुमति दें।

बैंकिंग प्रणाली के लिए विवेकपूर्ण विनियामक रूपरेखा के संबंध में हम प्रशासित ब्याज दर के युग से मुक्त ब्याज दर व्यवस्था की ओर एक आठगुना निर्णयात्मक ऋण वर्गीकरण से वास्तविक मानदण्डों पर आधारित विवेकपूर्ण आस्ति वर्गीकरण की ओर, सांविधिक न्यूनतम पूँजी और

पूँजी - जमाराशि अनुपात की सरल अवधारणा से जोखिम आधारित पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड - पहले बासेल I के ढाँचे से अब बासेल II के ढांचे की ओर काफी दूर तक चले आये हैं। अब *'योग्य और समुचित'* मानदण्ड के माध्यम से कंपनी अभिशासन को सुधारने, बैंकों में एकीकृत जोखिम प्रबंधन प्रणालियों को प्रोत्साहित करने और अधिक पारदर्शी प्रकटीकरण मानकों के माध्यम से बाज़ार अनुशासन को प्रोत्साहित करने पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इस दौरान नीतिगत प्रयास यह रहा है कि घरेलू अनिवार्यताओं और देश के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए हमारे विनियामक मानदण्डों का स्तर अंतर्राष्ट्रीय उत्कृष्ट प्रणाली के साथ बनाए रखना है। विवेकपूर्ण विनियमन तैयार करने में भारतीय रिज़र्व बैंक का परामर्शी दृष्टिकोण वर्तमान विनियामक युग का प्रमाण-चिह्न रहा है जो विचाराधीन मामलों पर विभिन्न अभिमतों को शामिल करने में सहायता प्रदान करता है।

पर्यवेक्षी ओर से, हमने विश्व की सर्वोत्तम प्रणाली के साथ तुलना कर सके ऐसी सुरक्षित और मजबूत बैंकिंग प्रणाली को सुनिश्चित करने के लिए अपने पर्यवेक्षण को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने में लंबा रास्ता माप लिया है। अतः हम सत्तर के दशक में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किए जा रहे बैंकों के प्रत्यक्ष वार्षिक मूल्यांकन से अस्सी के दशक के दौरान वार्षिक वित्तीय समीक्षा की प्रणाली से आगे नब्बे के दशक के दौरान एकल बैंकों के वार्षिक वित्तीय निरीक्षण से और आगे वित्तीय समूह के एकीकृत पर्यवेक्षण की ओर निरंतर बढ़ते गए ताकि समूह-वार आधार पर पर्यवेक्षी चिंताओं को संबोधित किया जा सके। बैंकों के किए जा रहे पर्यवेक्षण की पर्यवेक्षी रणनीति के एक भाग के रूप में वर्ष 1995 में बैंकिंग प्रणाली की परोक्ष निगरानी भी लागू की गयी ताकि बैंकों की आवधिक संपूर्ण प्रत्यक्ष जाँच की पूर्ति की जा सके। निर्णायक विवेकपूर्ण मानदण्डों पर आधारित पर्यवेक्षी रेटिंग नमूनों (सीएएमइएलएस तथा सीएसीएस) को भी भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विकसित किया गया ताकि बैंकों की समग्र स्थिति का संपूर्ण जायजा लिया जा सके। त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई (पीसीए) ढाँचा लागू किया गया ताकि बैंक में आये किसी तनाव की स्थिति में समय रहते हस्तक्षेप किया जा सके। बैंकों का जोखिम आधारित पर्यवेक्षण लागू करना अद्यतन पर्यवेक्षी पहल रहा है ताकि लेनदेन लेखा-परीक्षा से बाहर आया जा सके और बैंकों के जोखिम ढाँचे के साथ मिलकर पर्यवेक्षी प्रयासों को अनुकूल बनाया जा सके तथा उपलब्ध बेहद कम पर्यवेक्षी संसाधन का इष्टतम उपयोग किया जा सके। अंत में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर की अध्यक्षता में 1994 में गठित वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड बैंकिंग प्रणाली के विनियामक और पर्यवेक्षी ढाँचे में परिवर्तित करने में मार्गदर्शक रहा है।

जबकि बहुआयामी विनियामक और पर्यवेक्षी उपाय न्यायोचित रूप में भारतीय बैंकिंग प्रणाली के उन्नत विवेकपूर्ण मानदण्डों, चाहे वे अनर्जक आस्तियों अथवा पूँजी पर्याप्तता अनुपात के स्तर हों, में उल्लेखनीय रूप से प्रतिबिंबित हैं तथापि इनमें आत्मतुष्टि के लिए कोई जगह नहीं है। लगातार बढ़ते हुए वित्तीय वैश्वीकरण के युग में और तीव्र वित्तीय नवोन्मेषीकरण के समक्ष हममें से सभी को लगातार और अधिक जानकारी पाने तथा अपने कौशल और ज्ञान को अद्यतन बनाने की आवश्यकता बनी रहेगी ताकि वित्तीय संसार में उभरती हुई चुनौतियों का सामना किया जा सके।

विनियामक वातावरण के संबंध में कुछ उद्धरण

अब मैं अपने विनियामक वातावरण के विभिन्न पक्षों पर कुछ कहना चाहूँगा। भारतीय रिज़र्व बैंक ने देश की सेवा में व्यावसायिकता का एक प्रमाणित उल्लेखनीय रेकार्ड अर्जित किया है जिसे देश के भीतर और वैश्विक दोनों स्तरों पर अधिक विश्वनीयता मिली है। इस विश्वसनीयता के कारण भारतीय रिज़र्व बैंक को बढ़े हुए स्तरों पर एक स्वगतिशील समान वृद्धि जारी रखते हुए मूल्य और वित्तीय

स्थिरता बनाए रखने के लिए सुधार प्रक्रिया को विश्वस्त रूप से जारी रखने में सहायता मिली है। तथापि, जैसाकि मैंने उल्लेख किया है, कतिपय क्षेत्रों में भारतीय रिज़र्व बैंक के वर्तमान विवेकपूर्ण विनियामक ढांचे के कतिपय क्षेत्रों के संबंध में कुछ गलतफहमियाँ दिखाई पड़ी हैं। मैं उनमें से कुछ विशिष्ट बातों का संक्षिप्त उल्लेख करना चाहूँगा और यह बताना चाहूँगा कि किस प्रकार अवधारणाएं और वास्तविकता अक्सर एक रूप में नहीं दिखाई देती हैं।

शाखा प्राधिकार नीति

जैसाकि आप जानते हैं, भारतीय रिज़र्व बैंक ने सितंबर 2005 में एक नई शाखा प्राधिकार नीति की घोषणा की जिसके अंतर्गत देश में बैंक की शाखाओं के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अंगीकृत प्राधिकार प्रक्रिया में कतिपय परिवर्तन लाये गये। पूर्व की प्रणाली के विपरीत, जहाँ बैंक भारतीय रिज़र्व बैंक से शाखा प्राधिकार के लिए वर्ष भर बार-बार संपर्क करते थे, संशोधित प्रणाली प्रत्येक आवेदक बैंक के साथ परामर्श और चर्चा के अनुसार बैंकवार वार्षिक सकल प्राधिकार प्रदान करने के द्वारा इस प्रयोजन के लिए एक संपूर्ण और कारगर दृष्टिकोण उपलब्ध कराती है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बैंक अपनी शाखा नेटवर्क आवश्यकताओं का एक समेकित दृष्टिकोण अपनाएं जिसमें अपनी कारोबारी रणनीति के अनुरूप एक वर्ष की समय-सीमा के दौरान शाखा पुनराबंटन, विलयन, परिवर्तन और बंद करने के साथ-साथ एटीएम की स्थापना शामिल हो और इसके बाद वे तदनुसार समेकित वार्षिक प्राधिकार के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक से संपर्क करें।

कुछ क्षेत्रों में यह भ्रम भी दिखाई देता है कि नई नीति के अंतर्गत बैंकों को वार्षिक प्राधिकार कार्रवाई के लिए प्रतीक्षा करनी है और इस बीच किसी आवश्यक प्राधिकार के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक से संपर्क करने के लिए उन्हें रोका गया है। चूँकि बैंकों के शाखा विस्तार की योजना सुविचारित होना प्रत्याशित है, सामान्यत: विस्तृत रूप से अनुमोदित वार्षिक प्रक्रिया में मध्यावधि के दौरान बैंकों द्वारा किसी तात्कालिक अथवा अत्यावश्यक प्राधिकार की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए। तथापि, मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहूँगा कि नई नीति में वर्ष के दौरान किसी भी समय वार्षिक योजना के बाहर, विशेषत: ग्रामीण/कम बैंक सुविधावाले क्षेत्रों में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा बैंक शाखाएं खोलने के लिए किसी अत्यावश्यक प्रस्ताव पर विचार किए जाने की संभावना को बाहर नहीं रखा गया है। यह लचीलापन जुलाई 2007 के मास्टर परिपत्र में यथानिहित हमारे नीति दिशानिर्देशों में स्पष्ट रूप से वर्णित है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रकार इस पर ध्यान नहीं दिया गया है।

कुछ बैंकों के बीच यह भावना भी दिखाई देती है कि नई प्राधिकार नीति के अंतर्गत अंगीकृत की गई प्रक्रिया अधिक जटिल है और इसके परिणामस्वरूप प्राधिकार जारी करने में देरी हुई है। चूँकि बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे अपनी वार्षिक विस्तार योजना के लिए अपने संबंधित बोर्डों का अनुमोदन प्राप्त करने के बाद ही भारतीय रिज़र्व बैंक से संपर्क करें, यह संभव है कि भारतीय रिज़र्व बैंक के पास अपनी वार्षिक योजना दर्ज कराने के लिए अपेक्षित पूर्व तैयारी का समय कुछ अधिक हो सकता है। तथापि, भारतीय रिज़र्व बैंक की ओर से उसे प्रोसेस करने का समय सामान्यत: एक से दो महीने के भीतर रहा है जिसे मैं उस प्रक्रिया में उत्पन्न बैंकों के साथ परामर्श के तत्व को देखते हुए उचित मानता हूँ। तथापि, नई नीति के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी की गई प्राधिकार की वास्तविक संख्या पहले से काफी ज्यादा रही है। उदाहरण के लिए वर्ष 2003-04, 2004-05 और 2005-06 के दौरान पुरानी नीति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए क्रमश: 881, 1125 और 1259 की कुल प्राधिकारों की संख्या के विपरीत वर्ष 2006-07 के दौरान नई नीति के अंतर्गत जारी किए गए प्राधिकारों की संख्या 2028 थी। इस प्रकार इस सामान्य अवधारणा के विपरीत कि नई नीति

के अंतर्गत प्राधिकारों की स्वीकृति अधिक प्रतिबंधात्मक रही है, सच्चाई यह है कि पिछले वर्ष प्रदान किए गए प्राधिकारों की कुल संख्या में लगभग 61 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि हुई है।

तथापि, मैं चिंतित हूँ कि प्राप्त प्राधिकारों का उपयोग करने में बैंकों के कार्यनिष्पादन में ऐसे सुधार नहीं हुए हैं। बैंकों को मार्च 2007 के अंत में उनके द्वारा क्रमश: वर्ष 2004-05 (अप्रैल-मार्च) और 2005-06 के लिए मांगे गए प्राधिकारों के 97 प्रतिशत और 62 प्रतिशत की सीमा तक प्राधिकार स्वीकृत किए गए जिसमें से उन वर्षों में 30 प्रतिशत और 38 प्रतिशत स्वीकृत प्राधिकारों का उपयोग इन प्राधिकारों की स्वीकृति के एक अथवा दो वर्षों के बाद भी नहीं किया गया है। आज की तारीख तक वर्ष 2006-07 के लिए उपयोग नहीं किए जाने की सीमा 61 प्रतिशत जितनी अधिक है जबकि मांगे गए प्राधिकारों के 69 प्रतिशत की ही स्वीकृति दी गयी थी। यद्यपि, मेरी धारणा है कि मार्च 2007 से कई लाइसेन्सों का उपयोग किया जा चुका है, तो भी मैं यहाँ उपस्थित बैंकों से आग्रह करूंगा कि वे स्वीकृत प्राधिकारों का तेजी से और पूर्ण रूप में उपयोग सुनिश्चित करें।

आपको स्मरण होगा कि पुरानी प्राधिकार नीति के अंतर्गत बैंक भारतीय रिज़र्व बैंक के पूर्व अनुमोदन के बिना अपनी पसंद की जगह पर कार्य स्थल से बाहर एटीएम स्थापित करने के लिए स्वतंत्र थे लेकिन एटीएम के परिचालन के पहले उन्हें भारतीय रिज़र्व बैंक के संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय से केवल एक लाइसेन्स की आवश्यकता होती थी ताकि बैंककारी विनियमन अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। तथापि, संशोधित प्राधिकार नीति के अंतर्गत बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे कार्यस्थल से बाहर एटीएम स्थापित करने के लिए भी भारतीय रिज़र्व बैंक का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करें। अत: कुछ ने यह विचार व्यक्त किया कि नई नीति में एटीएम के पूर्व प्राधिकार की अपेक्षा पूर्णत: न्यायसंगत नहीं है क्योंकि कोई एटीएम बैंकों के लिए कारोबार का पूर्ण स्थान नहीं होता है। मुझे जल्दी से यहाँ यह उल्लेख करना है कि भारतीय रिज़र्व बैंक एटीएम की स्थापना का प्राधिकार देने में उदार रहा है तथा लगभग 7,443 एटीएम स्थापित करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्राप्त सभी अनुरोधों को वर्ष 2006-07 के लिए पूर्णत: स्वीकार कर लिया गया है।

जैसाकि हम जानते हैं कि एटीएम कई स्वरूपों में भारत में आज उपयोग में लाए जा रहे हैं, वे पहले से ही नकदी के जमा और आहरण, शेषों की पूछताछ, लेखा विवरण आदि उपलब्ध कराते हैं। तथापि, जैसाकि कुछ विकसित देशों में देखा गया है प्रौद्योगिकी यह अनुमति देती है और बैंक ग्राहकों को अधिक विस्तृत स्वरूप की बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने के लिए एटीएम लगाये जा सकते हैं और इस प्रकार उनमें बैंकिंग कारोबार का एक अधिक पूर्ण स्थान बनने की संभावना है। किसी भी मामले में चूँकि एटीएम बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गया है, यह केवल तर्कपूर्ण होगा कि बैंकों की नेटवर्क योजना में एटीएम स्थापित करने की योजना को भी शामिल किया जाए और प्राधिकरण के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक को प्रस्तुत उनकी वार्षिक योजना में यह प्रतिबिंबित हो। इसके अलावा बैंकिंग सेवाओं के संबंध में विश्व व्यापार संगठन के प्रति भारत की वचनबद्धता में बाज़ार प्रवेश सीमाओं में विदेशी बैंकों के एटीएम के विशिष्ट लाइसेंसीकरण का प्रावधान है। यद्यपि, भारत द्वारा प्रति वर्ष वचनबद्ध 12 लाइसेंसों की सीमा में इन एटीएम लाइसेंसों की गणना नहीं की जाती है' अत: उभरते हुए वैश्विक संदर्भ में यह केवल समुचित होगा कि एटीएम को विनियामक प्राधिकार नीति के पर्यवेक्षण के भीतर बनाए रखा जाए।

भारत में विदेशी बैंकों का परिचालन

वर्तमान में 273 शाखाओं के एक नेटवर्क और कार्यस्थल से दूर 871 एटीएम के साथ भारत में 29 विदेशी बैंक परिचालन कर रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में यदा-कदा एक

संदेह व्यक्त किया जाता है कि क्या विदेशी बैंकों के कार्यकलाप के संबंध में भारत में विनियामक वातावरण उदार है और क्या भारतीय बैंकिंग प्रणाली में विदेशी सहभागिता के प्रति विनियामक दृष्टिकोण उदारीकृत वातावरण के अनुरूप है? निस्संदेह, तथ्य यह संकेत देते हैं कि विदेशी बैंकों के संबंध में रिज़र्व बैंक द्वारा अनुपालित विनियामक व्यवस्था भेदभावरहित है और वस्तुत: वैश्विक मानकों के अनुसार अधिक उदार है। कुछ ऐसे तथ्य हैं जो इस तर्क को उचित ठहराते हैं;

- भारत विदेशी बैंकों को एकल श्रेणी का बैंकिंग लाइसेंस जारी करता है और उनसे यह अपेक्षा नहीं करता है कि वे अगले वर्षों के दौरान बैंकिंग लाइसेंस से निम्नतर से उच्चतर कोटि की ओर बढ़ें, जैसी प्रथा कतिपय अन्य क्षेत्रों में है।
- एकल श्रेणी का यह लाइसेंस वस्तुत: उन्हें भारतीय बैंकों जैसे आधार पर स्थापित करता है और उनके परिचालन के क्षेत्रों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है। इस प्रकार एक विदेशी बैंक अपने परिचालन के प्रथम दिन से ही किसी भारतीय बैंक के लिए अनुमत कोई अथवा सभी गतिविधियाँ शुरू कर सकता है और सभी विदेशी बैंक खुदरा तथा थोक दोनों बैंकिंग कारोबार कर सकते हैं। यह व्यवस्था अन्य कई देशों की प्रथाओं के विपरीत है।
- विदेशी बैंकों अथवा उनकी समूह कंपनियों द्वारा भारत में गैर-बैंकिंग वित्तीय सहायक कंपनियाँ स्थापित किए जाने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।
- प्रीमियम की एक भेद-भावरहित दर पर सभी विदेशी बैंकों को समान रूप से निक्षेप बीमा उपलब्ध है। कई अन्य देशों में भेद-भावपूर्ण व्यवस्था है।
- पूँजी पर्याप्तता, आय निर्धारण और आस्ति वर्गीकरण आदि के लिए विदेशी बैंकों पर लागू विवेकपूर्ण मानदण्ड कमोबेश वही हैं जो भारतीय बैंकों के लिए हैं। एक्सपोजर की सीमा, निवेश मूल्यांकन आदि जैसे अन्य विवेकपूर्ण मानदण्ड भी उसी प्रकार हैं जिस प्रकार वे भारतीय बैंकों पर लागू हैं।
- कुछ देशों के विपरीत जहाँ विदेश से संबंधित कारोबार पर समग्र निवेश सीमाएं लागू की गई हैं, भारत ने कारोबार के उस स्वरूप पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया है जो विदेशी बैंकों की शाखाओं के माध्यम से किया जाता है। विदेशी बैंकों की शाखाओं के लिए यह लाभप्रद रहा है क्योंकि समस्त देशी कारोबार सामान्यत: इन शाखाओं के माध्यम से किया जा सकता है। काफी मात्रा में विदेशी संस्थागत निवेशक कारोबार भी अनन्य रूप से विदेशी बैंकों द्वारा किया जाता है।
- वस्तुत: कुछ भारतीय बैंक यह तर्क देते हैं कि भारतीय बैंकों के लिए अपेक्षित 40 प्रतिशत के स्तर के बदले समायोजित निवल बैंक ऋण के 32 प्रतिशत की प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र उधार की न्यूनतर अपेक्षा के माध्यम से विदेशी बैंकों के पक्ष में सकारात्मक भेद-भाव की कतिपय मात्रा अभी भी जारी है। भारतीय बैंकों के मामले के विपरीत कृषि अग्रिमों के संबंध में उप-सीमा भी विदेशी बैंकों के लिए लागू नहीं है जबकि विदेशी बैंकों द्वारा स्वीकृत निर्यात ऋण की गणना प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र उधार देयताओं के लिए की जा सकती है जिसकी अनुमति भारतीय बैंकों के लिए नहीं है।
- उल्लेखनीय रूप से, विश्व व्यापार संगठन के प्रति हमारी वचनबद्धता के अनुसार नए विदेशी बैंकों के लिए लाइसेंसों को अस्वीकार किया जा सकता है जब बैंकिंग प्रणाली की तुलनपत्र आधारित तथा तुलनपत्रेतर दोनों मदों सहित कुल आस्तियों में भारत में विदेशी बैंकों की आस्तियों का हिस्सा (तुलनपत्र आधारित तथा तुलनपत्रेतर दोनों मदों सहित) 15 प्रतिशत से अधिक हो जाता है। तथापि,

हमने नए विदेशी बैंकों को लाइसेंस अस्वीकरण में स्वत: इस सीमा को लागू नहीं किया है यद्यपि, बैंकिंग प्रणाली की कुल आस्तियों में विदेशी बैंकों का वास्तविक हिस्सा तुलनपत्र आधारित तथा तुलनपत्रेतर दोनों मदों सहित (सांकेतिक मूल आधार पर) इस सीमा से काफी अधिक रहा है। जैसा कि भारत की व्यापार नीति समीक्षा, 2007 में उल्लेख किया गया है, जनवरी 2007 के अंत तक विदेशी बैंकों का यह हिस्सा 49 प्रतिशत था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय विनियामक व्यवस्था अनिवार्यत: विदेशी बैंकों की शाखाओं और देशी बैंकों के बीच उनके प्राधिकरण अथवा परिचालन के क्षेत्र के संबंध में भेद-भावरहित है यद्यपि, कुछ लोग यह मानते हैं कि विदेशी बैंकों के पक्ष में कुछ समारात्मक भेद-भाव है। जैसा कि कहा गया है, भारतीय विनियामक व्यवस्था वास्तव में सर्वाधिक रूप से समान स्वरूप की है और विकसित तथा उभरती हुई दोनों अर्थव्यवस्थाओं के कई अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा विदेशी बैंकों को एक समान कार्य करने का सर्वाधिक अवसर उपलब्ध कराती है।

जहाँ तक भारतीय वाणिज्यिक बैंकिंग प्रणाली में विदेशी बैंकों के **बाज़ार हिस्से** का संबंध है, जमा और अग्रिमों में जून 2007 के अंत में उनका हिस्सा क्रमश: 6.11 और 6.83 प्रतिशत रहा है। तथापि, विदेशी बैंक 72.66 प्रतिशत के सर्वोच्च बाज़ार हिस्से के साथ तुलनपत्रेतर कारोबार में अधिक प्रभावी रहे हैं। विदेशी बैंकों के अतिरिक्त निजी क्षेत्र के दो बड़े भारतीय बैंक भी हैं जिनमें अनिवासी स्वामित्त्व 74 प्रतिशत तक अनुमत है, जिन्हें भारत में निगमित समझा जाता है लेकिन वे प्रधान रूप से विदेशी स्वाधिकृत बैंक हैं। विदेशी बैंकों के साथ-साथ इन बैंकों के पास देश में जमा, अग्रिम और तुलनपत्रेतर कारोबार का क्रमश: 17.46, 18.65 और 76.63 प्रतिशत संयुक्त बाज़ार हिस्सा है जो किसी भी तरह से महत्त्वहीन स्तर नहीं है। इसके अतिरिक्त लगभग 10 बड़े सूचीबद्ध सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भी हैं जिनमें मार्च 2007 के अंत तक अनिवासी/विदेशी संस्थागत निवेशक शेयरधारिता 20 प्रतिशत की अनुमत सीमा के समीप है। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के इन बैंकों में निवासी निजी शेयरधारिता केवल तीस प्रतिशत के आस-पास होगी।

इसके अलावा, भारत में विदेशी मुद्रा बाज़ार में विदेशी बैंकों का हिस्सा भी महत्त्वपूर्ण था और इसने बढ़ती हुई प्रवृत्ति दर्ज की थी। उदाहरण के लिए, वर्ष 2005-06 के दौरान कुल विदेशी मुद्रा पण्यावर्त में 41 प्रतिशत के उनके हिस्से के बदले वर्ष 2007-08 की पहली छमाही के दौरान उनका हिस्सा 52 प्रतिशत रहा।

इस प्रकार पूर्णता की दृष्टि से इस धारणा का औचित्य निर्धारण करना अत्यंत कठिन होगा कि भारतीय बैंकिंग बाज़ारों में विदेशी और अनिवासी सहभागिता महत्त्वहीन है अथवा प्रतिबंधित है और यह कि नीति अथवा विनियामक वातावरण इसके अनुकूल नहीं है।

भारत में विदेशी बैंकों के कार्यकलाप का दूसरा पक्ष भारतीय परिचालनों से उत्पन्न प्रतिलाभ है। मैं यहाँ कुछ रोचक तथ्य उद्धृत करना चाहता हूँ। वर्ष 2005-06 के लिए भारत में विदेशी बैंकों का प्रति शाखा निवल लाभ 11.99 करोड़ रुपए था जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए तदनुरूपी आंकड़ा 0.33 करोड़ रुपए था। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2006-07 के लिए, विदेशी बैंकों का आस्तियों पर प्रतिलाभ (आरओए) 1.65 प्रतिशत था जबकि ईक्विटी पर प्रतिलाभ (आरओई) 14.02 प्रतिशत था जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए तदनुरूपी आँकड़े 0.82 प्रतिशत और 13.62 प्रतिशत थे। इन प्रतिलाभों को ऐसे मानदण्डों के लिए अंतर्राष्ट्रीय बेंचमार्क के संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है जिन्हें सामान्यत: न्यूनतर समझा जाता है। इस प्रकार, विदेशी बैंकों के भारतीय परिचालन भारी पारिश्रमिक देने वाले हैं और उल्लेखनीय रूप से प्रतिलाभ उनके घरेलू प्रतियोगियों तथा

प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय स्तरों की अपेक्षा काफी अधिक हैं। इसे घरेलू बाज़ार गतिविधि के स्तर और भारतीय बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा के अभाव के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है, साथ ही, यह काफी सीमा तक उनके मिश्रित कारोबार तथा तुलनपत्रेतर कारोबार, जो अधिकतर विनियामक-पूंजी कार्यक्षम है, में प्रभावी हिस्से का और अब तक देश के अधिकांशत: प्रमुख शहरों तक सीमित उनकी शाखा उपस्थिति के ढाँचे का परिणाम है।

तथापि, विदेशी बैंक परिचालनों का दूसरा पहलू भारत में उनकी शाखाओं का प्राधिकरण है। जैसा कि आप अवगत हैं विश्व व्यापार संगठन के प्रति भारत की वर्तमान वचनबद्धता, जो 1997-98 से लागू है, के अनुसार नए बैंकों और विद्यमान बैंकों दोनों सहित प्रतिवर्ष विदेशी बैंकों को केवल 12 लाइसेंसों की अनुमति देना हमारा दायित्त्व है। भारत की वचनबद्धता के अनुसार 12 लाइसेंसों के इस दायित्त्व में एटीएम शामिल नहीं हैं जिनकी अनुमति भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दी जा सकती है। तथापि, भारतीय रिज़र्व बैंक विदेशी बैंकों द्वारा स्थापित किए गए एटीएम की संख्या की गणना नहीं करते हुए हमारे दायित्त्व से उच्चतर स्तरों पर लगातार प्राधिकरणों को स्वीकृति देता रहा है। इस प्रकार वर्ष 2003 से अक्तूबर 2007 के दौरान भारतीय रिज़र्व बैंक ने भारत में विदेशी बैंकों की लगभग 75 शाखाओं को प्राधिकृत किया है जिसमें उनके द्वारा कार्यस्थल से दूर स्थापित किए गए एटीएम शामिल नहीं हैं। इस प्रकार भारत में विदेशी बैंकों के लिए शाखा प्राधिकरण नीति को अधिक उदार भी कहा जा सकता है केवल उदार नहीं।

विश्व व्यापार संगठन संबंधी दायित्त्वों के होते हुए भी किसी देश में विदेशी बैंकों की उपस्थिति को अनुमति प्रदान करना कुछ स्वरूप में राष्ट्रों के बीच सहमति की सीमा द्वारा भी निर्देशित होता है - साधारणत: जिसका अर्थ यह है कि पारस्परिक देशों में बैंकों के लिए प्राधिकारों की स्वीकृति में कुछ प्रतिरक्षात्मक अनुपात होना चाहिए। इस संदर्भ में जमीनी वास्तविकताओं को प्रकट करने वाला एक उदाहरण है। वर्ष 2003 से अक्तूबर 2007 के दौरान, भारत में यूएसए आधारित बैंकों को 19 प्राधिकारों की स्वीकृति दी गई जिनमें से अधिकांश का उपयोग किया जा चुका है। तथापि, उन पांच वर्षों की अवधि में यूएसए में तीन शाखाएं, दो सहायक कंपनियां और नौ प्रतिनिधि कार्यालय स्थापित करने के लिए भारतीय बैंकों के अनुरोध की तुलना में अमेरिकी भूमि पर भारतीय बैंकों के किसी भी कार्यालय को प्राधिकृत नहीं किया गया था। कुछ अनुरोध अमेरिकी प्राधिकारियों के पास पाँच वर्ष से अधिक अवधि से लंबित हैं।

तथापि, भारतीय वित्तीय क्षेत्र में विदेशी सहभागिता का दूसरा पहलू भारत में परिचालनरत गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) का विदेशी स्वामित्त्व है जिसमें से कुछ विदेशी बैंकों की सहायक कंपनियाँ हैं। यह उल्लेख करना रोचक होगा कि अगस्त 2007 में जमाराशि स्वीकार नहीं करने वाली प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण (एनडी-एसआइ) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की श्रेणी में विदेशी स्वामित्त्व के कुछ तत्व वाली गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के पास 87,542 करोड़ रुपए की परिसंपत्ति थी जो इस श्रेणी की कंपनियों की कुल परिसंपत्तियों के 26 प्रतिशत से अधिक था। इनमें से अधिकांश विदेशी स्वामित्ववाली गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का आस्ति आधार 34,095 करोड़ रु. था, जो इस वर्ष की कंपनियों की कुल आस्तियों का 9.2 प्रतिशत था जो एक ऐसा स्तर था जिसे महत्त्वहीन नहीं समझा जा सकता। अत: जमाराशि स्वीकार न करनेवाली प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ, जो भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निकट से नियंत्रित नहीं हैं, कतिपय मामलों में भारत में विदेशी बैंकों की पहुँच के विस्तार का एक साधन उपलब्ध कराती हैं। इस प्रकार वर्तमान नीति वातावरण से देश के गैर-बैंकिंग वित्तीय क्षेत्र में भी विदेशी सहभागिता का एक निष्पक्ष स्तर तैयार होता है।

भारत में बैंककारी विनियमन का विकास - कुछ पहलुओं पर एक पूर्वावलोकन

वी.लीलाधर

भारतीय रिज़र्व बैंक का प्रतिभूतिकरण दिशानिर्देश

जैसा कि आप भली प्रकार अवगत हैं, भारतीय रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2005 में जनता के अभिमत के लिए मानक आस्तियों के प्रतिभूतिकरण हेतु दिशानिर्देश का पहला प्रारूप जारी किया और एक व्यापक परामर्शी प्रक्रिया के बाद इस बाज़ार के व्यवस्थित विकास को सुविधा प्रदान करने के लिए फरवरी 2006 में अंतिम दिशानिर्देश जारी किए गए। तथापि, कतिपय क्षेत्रों में एक विचार व्यक्त किया गया है कि ये दिशानिर्देश प्रतिभूतिकरण की अवधारणा में परिकल्पित हितलाभों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति रखते हैं और इस प्रकार देश में प्रतिभूतिकरण बाज़ार के विकास में बाधा पहुँचाते हैं। आज मैं संक्षिप्त रूप में भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य तथा हमारी संरचना में अंतर्निहित सोच और औचित्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देश मोटे तौर पर अन्य क्षेत्रों में कई विनियामकों के निर्धारणों के अनुरूप हैं। उदाहरण के लिए, हमारे दिशानिर्देशों में निर्धारित *वास्तविक बिक्री* और परिसंपत्ति अर्जित करनेवाले से विशेष प्रयोजन सुविधा(एसपीवी) की स्वतंत्रता भी एक अथवा दूसरे स्वरूप में आस्ट्रेलिया, मलेशिया, सिंगापुर,यूके और यूएसए में पाए जानेवाले विनियामक दिशानिर्देशों में निहित है। उसी प्रकार विशेष प्रयोजन सुविधा के लिए उपलब्ध कराई गई ऋण वृद्धि के विवेकपूर्ण व्यवहार तथा उसके बदले हमारे दिशानिर्देशों में यथानिर्धारित पूँजी प्रभार की अपेक्षा भी आस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किंगडम और सिंगापुर के विनियामक ढाँचे में प्रतिध्वनित होती है। उसी तरह *माँग पूरी करना (क्लीन अप कॉल्स)* अथवा प्रवर्तक द्वारा विशेष प्रयोजन सुविधा से अवशिष्ट निष्पादक आस्तियों की पुनर्खरीद से संबंधित प्रावधान भी ऑस्ट्रेलिया, यूनाईटेड किंगडम और सिंगापुर के विनियमों में दिखाई देते हैं। प्रवर्तक द्वारा विशेष प्रयोजन सुविधा के माध्यम से जारी की गई प्रतिभूतियों की खरीद पर हमारे द्वारा लागू किए गए प्रतिबंध ऑस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किंगडम और सिंगापुर जैसे अन्य क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। उसी प्रकार विशेष प्रयोजन सुविधा के लिए चलनिधि सुविधा के प्रावधानों के संबंध में प्रतिबंध, विशेष प्रयोजन सुविधा के माध्यम से जारी प्रतिभूतियों की हामीदारी तथा प्रतिभूतिकृत आस्तियों की सर्विसिंग, कई अन्य क्षेत्रों में भी पायी जाती हैं, सिर्फ उनके ब्यौरों में और सख्ती की मात्रा में अंतर होता है। मैं इन सभी का विस्तार से उल्लेख यह निर्दिष्ट करने के लिए कर रहा हूँ कि प्रतिभूतिकरण पर भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देश विस्तृत रूप से कई अन्य क्षेत्रों में पाए जानेवाले व्यवहारों के अनुरूप हैं, यद्यपि उनकी अनोखी विशेषताएं हैं।

हमारे दिशानिर्देशों में निर्धारित लेखांकन व्यवहार विशेष प्रयोजन सुविधा को आस्तियों की बिक्री पर हुई किसी क्षति की सीधी मान्यता उपलब्ध कराते हैं लेकिन ऐसी बिक्री से उत्पन्न लाभ को विशेष प्रयोजन सुविधा द्वारा जारी प्रतिभूतियों/जारी की जाने वाली प्रतिभूतियों की समयावधि के दौरान परिशोधित किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार हमने विशेष प्रयोजन सुविधाओं को आस्तियों की बिक्री पर सीधे लाभ की मान्यता देने की अनुमति बैंकों को नहीं दी है। जैसा कि आप जानते हैं, कोई प्रतिभूतिकरण लेनदेन शुरू करने में प्रवर्तक के लिए मुख्य विचार विनियामक - पूँजी सहायता प्राप्त करना और किसी अन्य प्रकार से गैर-नकदी ऋण बही से, न कि लाभ से, चलनिधि उत्पन्न करना है । इस पृष्ठभूमि में भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों ने न्यायसंगत रूप में यह सुनिश्चित करने के लिए एक ऐसा दृष्टिकोण अंगीकृत किया है कि लाभ दर्ज करना प्रतिभूतिकरण लेनदेन शुरू करने के लिए प्रारंभिक उद्देश्य न बने, जो संभवत: अनौचित्यपूर्ण मूल्यांकनों के माध्यम से लाभ कमाना आसान कर सकता है और इसके परिणामस्वरूप वित्तीय विवरणों में विंडोड्रेसिंग की जा सकती है, जिनमें से कोई भी विवेकसम्मत ढंग से वांछनीय नहीं है। संक्षेप में, हमारे दिशानिर्देशों में बैंकों

द्वारा आस्तियों की बिक्री से सीधे लाभ निर्धारण पर प्रतिबंध बैंकों के लिए सटीक प्रोत्साहन ढाँचा निर्मित करता है, ताकि प्रतिभूतिकरण की अवधारणा में निहित आधारभूत उद्देश्य की उपेक्षा न हो।

कुछ विकसित देशों में हाल के सब-प्राइम संकट, जो जटिल संरचित लेनदेनों के माध्यम से संपूर्ण प्रणाली में विस्तृत ऋण जोखिम प्रसार के द्वारा उत्पन्न हुआ, के बाद की स्थिति में मेरा विश्वास है कि आप प्रतिभूतिकरण के प्रति एक समुचित प्रोत्साहन - अनुकूल विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अंगीकार किए जाने की गुणवत्ता को पसंद करेंगे। आखिरकार, हमें कुल मिलाकर यह पहचानने की जरूरत है कि प्रतिभूतिकरण भी एक ऋण-जोखिम-अंतरण लिखत है और इसमें प्रवर्तक बैंकों से प्रणाली के उन भागों में जोखिमों के प्रसार की संभावना है जो इस जोखिम का प्रबंध करने में आवश्यक रूप से पूरी तरह सुसज्जित नहीं हैं। अत: विवेकपूर्ण प्रतिबंधों के माध्यम से सटीक प्रोत्साहन ढाँचा सृजित करने में भारतीय रिज़र्व बैंक की भूमिका एक ऐसे दृष्टिकोण के रूप में दिखाई देगी जिसे स्वयं को अधिक संतुष्टि प्राप्त होगी।

सिद्धांत आधारित विनियमन (पीबीआर) की ओर अग्रसर होना

कतिपय क्षेत्रों में यह विचार व्यक्त किया जाता है कि भारतीय विनियामक संरचना को वर्तमान नियम आधारित दृष्टिकोण से सिद्धांत आधारित विनियमन की ओर अग्रसर होना चाहिए। किसी सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण की गुणवत्ता यह है कि किसी गतिशील बाज़ार के संदर्भ में, जहाँ उत्पाद नवोन्मेषीकरण आज की उपलब्धि है, विनियमों के प्रति सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण एक अधिक स्थायी विनियमन विकल्प उपलब्ध कराता है क्योंकि अंतर्निहित सिद्धांतों को प्रत्येक नए उत्पाद के साथ बदले जाने की आवश्यकता नहीं होगी जबकि बाज़ार तथा उत्पाद विकास की अनोखी विशेषताओं के समाधान हेतु विस्तृत नियमों को लगातार आशोधित किया जाना पड़ता है। तथापि, सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण की उक्त सर्वोच्चता के बावजूद अब तक बहुत कम देशों ने जोर-शोर से अथवा व्यापक तरीके से इसे अंगीकृत किया है। यूनाइटेड किंगडम का एफएसए, जो सिद्धांत आधारित विनियमों के अंगीकरण में अग्रणी देशों में से एक है, के पास एक नियम पुस्तिका है जिसमें 8,000 से अधिक पृष्ठ हैं। अत: सिद्धांत आधारित विनियमन परिचालन उतना सरल नहीं है जितना कहा जाता है।

इस प्रकार किसी विनियमन व्यवस्था में सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण पर पूरा भरोसा करना शायद ही एक साध्य विकल्प हो क्योंकि विनियामक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उच्च स्तरीय सिद्धांतों का समर्थन परिचालनात्मक स्तर पर विस्तृत नियमों द्वारा करना होगा। उदाहरण के लिए इस सिद्धांत की व्याख्या करना सरल है कि *अपने ग्राहक से निष्पक्ष व्यवहार करें*, लेकिन जमीनी स्तर पर इसे सुनिश्चित करने के लिए इस सिद्धांत में अंतर्निहित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विशिष्ट नियमों और निर्धारणों की निरंतर अपेक्षा रहेगी। इसके अतिरिक्त, कोई सिद्धांत आधारित विनियमन दृष्टिकोण व्यापक सिद्धांतों की व्याख्या करने में पर्यवेक्षकों और विनियामकों के विवेक और निर्णय पर अधिकतम निर्भर होने को पहले से मानकर चलता है - यह एक ऐसा पहलू है जिसके साथ बाज़ार के खिलाड़ी बहुत सहज नहीं होंगे। दूसरी ओर, विस्तृत विनियामक निर्धारणों के अभाव में विनियमित संस्थाओं को भी सिद्धांतों का परिचालनात्मक स्तर पर कार्यान्वयन करते समय उनकी मूल भावना को ठीक-ठीक समझने हेतु दृष्टिकोण की परिपक्वता के एक निश्चित स्तर का विकास करने की आवश्यकता होगी। अत: यह दृष्टिकोण विनियामक तथा विनियमित संस्थाओं के लिए कौशल उन्नयन के भारी प्रयास की अपेक्षा रखता है।

इसके अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में विनियमन के कुछ ऐसे क्षेत्र हो सकते हैं जो सिद्धांत आधारित विनियमन

दृष्टिकोण के प्रति अधिक सुधारात्मक होंगे जबकि कतिपय अन्य क्षेत्रों को विस्तृत विनिर्धारक नियमों की आवश्यक रूप से अपेक्षा होगी। इस प्रकार विनियमन के लिए नियम आधारित और सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण परस्पर अलग-अलग विकल्प नहीं हैं बल्कि वे पूरी तरह सह-अस्तित्व वाले हैं और एक दूसरे की पूर्ति कर सकते हैं। उदाहरण के लिए बासेल II ढांचे का पिलर I आवश्यक रूप से नियम आधारित निर्धारण है, जबकि पिलर II सिद्धांत आधारित व्यवस्था की ओर अधिक उन्मुख है। भारतीय रिज़र्व बैंक के भीतर हम भी बैंकिंग विनियमों के लिए एक सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण अंगीकार करने की संभावना का पता लगाने की प्रक्रिया में हैं लेकिन भारतीय संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण स्तर पर सिद्धांत आधारित विनियमन दृष्टिकोण अंगीकार करने के लिए तैयार होने में कुछ समय लगेगा।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में मैं केवल इतना कहूँगा कि बैंकिंग क्षेत्र के लिए भारतीय विनियामक व्यवस्था पिछले छह दशकों के दौरान बहुत आगे चली आई है। वर्तमान विनियामक समाधान स्वामित्व तटस्थ, भेदभावरहित है और बाज़ार के सहभागियों को एक सुविधाजनक कार्य क्षेत्र उपलब्ध कराता है। आज के अपने प्रस्तुतीकरण में मैंने भी भारतीय बैंकिंग प्रणाली के विनियामक वातावरण के बारे में गलत रूप से सूचित की गई कतिपय आशंकाओं को दूर करने की दृष्टि से कुछ तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि भारत में विनियामक प्रणाली में सुधार के लिए भारी संभावनाएं हैं और बाज़ार सहभागियों के साथ एक सहभागी और परामर्शी दृष्टिकोण के माध्यम से हम निरंतर सुधारों की एक नीति का अनुसरण कर रहे हैं। अब तक वृद्धि, मूल्य स्थिरता, वित्तीय स्थिरता, दक्षता और बैंकिंग क्षेत्र की मजबूती के प्रति योगदान के मामले में नीतिगत परिणाम मापदण्डों के सभी मानकों से महत्त्वपूर्ण रहे हैं लेकिन भारतीय रिज़र्व बैंक के लक्ष्य में श्रेष्ठता की खोज़ एक अंतहीन यात्रा है। मैं बैंकिंग समुदाय से आग्रह करूँगा कि वे भावनाओं के साथ-साथ एक सकारात्मक और मूल्यों के विस्तृत सेट के साथ करोड़ों लोगों की सेवा करने के इस महान प्रयास में हमारे साथ शामिल हों।